International Journal of Applied Research 2019; 5(6): 448-449

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2019; 5(6): 448-449
www.allresearchjournal.com
Received: 20-04-2019
Accepted: 24-05-2019

माला कुमारी
शोध प्रज्ञा, विश्वविद्यालय–हिन्दी–विभाग, ल०ना० मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा,, बिहार, भारत।

Correspondence
माला कुमारी
शोध प्रज्ञा, विश्वविद्यालय–हिन्दी–विभाग, ल०ना० मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा,, बिहार, भारत।

समकालीन हिन्दी कहानियों में राजनीतिक चेतना

माला कुमारी

सारांश
समकालीन हिन्दी कहानियाँ अपने समय की सामाजिक, राजनीतिक आयामों के उद्घाटन में सर्वथा समर्थ हैं। जिस प्रकार राजनीतिक में धीरे–धीरे चारित्रिक स्खलन हुआ, उसे हिन्दी कहानियों ने हाथों हाथ लिया। आजादी के बाद यद्यपि लोकतंत्र की स्थापना हो गयी, पर लोक राजनीति से कोई लाभ न प्राप्त कर सका। उनकी सारी उम्मीदों पर पानी फिर गया। देश की आजादी वस्तुतः मुट्ठी भर लोगों की आजादी सिद्ध हुई। यहाँ के गरीबों, दलितों, कामगारों, स्त्रियों के लिए यह सत्ता का हस्तांतरण सिद्ध हुआ। ऐसे में असगर वजाहत, संजीव, सृंजय, उदय प्रकाश, कैलाश बनवासी, मैत्रेयी पुष्पा, राजेन्द्र यादव, मन्नू भंडारी, क्षमा शर्मा, क्षमा कौल, अनामिका, रमणिका गुप्ता, मृणाल पाण्डेय, कृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग आदि समकालीन कथाकारों ने अपनी कहानियों के माध्यम से तद्युगीन राजनीतिक विसंगतियों को यथार्थपूर्ण तरीके से उजागर किया। जो इस विधा की सबसे बड़ी उपलब्धि है।

मूल शब्दः समकालीन, सामाजिक, राजनीतिक चेतना

प्रस्तावना
राजनीति सामाजिक विकास से जुड़ा हुआ विशय है। यह सीधे–सीधे मनुष्य जीवन की बुनियादी चिंताओं से जुड़ा है और सामाजिक संरचना में होने वाले क्षरण से इसका महत्त्व कभी कम नहीं होता। इसी प्रकार साहित्य भी मनुष्य–जीवन के सरोकारों से जुड़ा हुआ है और यह कहना कि साहित्य को राजनीति से बचकर चलना चाहिए इस बात की वकालत करना है कि साहित्य का काम सिर्फ मनोरंजन करना है जो लोग ऐसा मानते हैं उनके लिए भांड़ों की रचनाओं में गंभीर साहित्य में कोई फर्क नहीं होता। प्रेमचंद ने यह बहुत पहले स्पष्ट कर दिया था कि साहित्य राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई नहीं है, बल्कि उसके आगे–आगे मशाल दिखाते हुए चलने वाली सच्चाई है। [1] यहाँ समकालीन हिन्दी कहानी को विषय बनाया गया है और यह प्रश्न उठना सहज है कि समकालीनता की सीमा रेखा क्या होगा? सैद्धांतिक बहस में न जाते हुए हम इतना ही निवेदन करना चाहेंगे कि कहानी कहने के और यथार्थ तथा कला को बरतने के तरीके में जहाँ से फर्क दिखलाई देने लगा, वहीं से समकालीन की शुरूआत होती है और इसका पीढ़ियों के विभाजन से कोई मतलब नहीं है। फिर भी यह उल्लेख करना आवश्यक होगा कि इस दौर में जो कहानी के क्षेत्र में नई पीढ़ी आई उसमें राजनीतिक बोध को लेकर अरूचि का भाव दिखलाई देता है। मगर देखने की बात यह है कि अराजनीतिक होना भी एक बारीक किस्म की राजनीति का ही हिस्सा होता है। बहरहाल इस बहस में पड़ना यहाँ असंगत होगा। काल के जिस हिस्से पर यह लेख केन्द्रित किया गया है, उसमें एकाधिक पीढ़ियों के कहानीकार लेखनरत हैं और उनकी राजनीतिक दृष्टि बहुत साफ है, चाहे वह भारतीय लोकतांत्रिक राजनीतिक के ऐतिहासिक विकास को लेकर हो या विश्व बाजार के दौर की नव उपनिवेशवादी राजनीति को लेकर, इनमें कोई अंतर्विरोध नहीं है। इस पर बात करने के लिए सबसे पहले उदय प्रकाश की कहानी 'मैंगोसिल' की चर्चा करने की आवश्यकता है। यह कहानी जिस समय छपी थी, वह वैश्विक पूँजी के प्रसार का दूसरा दौर था और इस समय तक यह स्पष्ट हो चुका था कि अमेरिकी पूँजीवाद के रथ के घोड़े पूरी तरह बेलगाम होकर तीसरी दुनिया नहीं रह गई है। दुनिया भर में सारा फौजी चिंतन अमेरिका करता है और शांति से लेकर आतंक के खिलाफ युद्ध की परिभाषा भी वही तय करता है। युगोस्लाविया में होली बॉम्ब का नारा हो या अफगानिस्तान में आतंक के खिलाफ युद्ध अथवा इराक में विनाश इन सारी कार्रवाइयों को उसने शांति की स्थापना के नाम पर ही अंजाम दिया। वास्तव में ये कार्रवाइयाँ अमेरिकी साम्राज्यवाद के प्रसार के लिए थीं और इस पाखंड की कलई 'मैंगोसिल' की सूरी यह कहकर उतार देता है कि चूँकि वह दुनिया भर में हो रहे अमेरिका दमन के बारे में बहुत कुछ जान गया है, इसलिए उसका सिर बड़ा हो गया है। उदय प्रकाश कहते हैं कि पेंटागन की रिपोर्ट के मुताबिक इस समय सभी देशों की सरकारों को इस

बड़े सिर बाले बच्चों पर निगाह रखनी पड़ेगी। सूरी ऐसा ही बच्चा है, जिससे अमेरिकी साम्राज्यवाद के वैश्विक अभियान को खतरा है। साथ ही यह भी इस कहानी में कहा गया है कि दुनिया तेजी से बदल रही और दिल्ली भी बदल रही है।[2] यानी उदय प्रकाश यह स्पष्ट कर देते हैं, दुनिया अमेरिकी संकेतों के अनुसार बदल रही है और भारत भी वैश्विक पूँजी के इस खेल में शामिल हो चुका है तथा देश की सरकारों का काम अमेरिकी पूँजीवाद के अभियान की निष्कंटक बनाने में अपना योगदान देना भर रह गया है।

यह उल्लेखनीय है कि उदय प्रकाश के राजनीतिक सरोकार उनकी कहानियों में साफ दिख जाते हैं और उनके टोन में आवेग अधिक होता है जो थीम के प्रति अत्यधिक संलग्नता के कारण उत्पन्न होता है। इसका कारण है कि वे वर्णन में चमत्कार उत्पन्न करने की प्रवृत्ति के शिकार हैं। इसके बावजूद यह कहा जा सकता है कि इनकी संवेदना का स्तर सघन है, इसलिए वर्णन छिछला नहीं मालूम पड़ता है। अपने अतिरिक्त आवेग को ये तराशी हुई भाषा और फंतासी के प्रयोग से यथार्थ की समझ पर हावी नहीं होने देते।[3]

राजनीति की निर्ममता और अमानवीयता को अनिल यादव 'लोक कवि का बिरहा' में बड़ी सूक्ष्मतापूर्वक प्रस्तुत करते हैं। कहानी विवरण के शिल्प में लिखी गई है, मगर एक–एक स्थिति का चित्रण कथाकार ने इतनी वारीकी और इत्मीनान से किया है कि न तो कथा के विकास में उत्सुकता का अभाव दिखलायी देता है न रोचकता में कमी आती है। जनम नाम का लोक कवि पिछड़ी जाति का है, मगर दलितों के साथ उठता–बैठता है, लिहाजा उसे जाति से बहिष्कृत कर दिया जाता है। कथाकार यहाँ हमारा परिचय भारतीय राजनीति के बड़े अंतर्विरोध से कराता है जो जाति–व्यवस्था पर आधारित है। हर जाति अपने से नीचे पदक्रम की जाति को हीन समझती है। मगर कहानी का मूल उद्देश्य जाति–व्यवस्था के पदक्रम को दिखलाना नहीं है। बल्कि जातिगत विभाजन के राजनीतिक प्रयोग को सामने लाना है। जनम दलित पार्टी से विधान परिषद के लिए चुना जाता है, कलाकार कोटे से। मगर वहाँ उसका उपयोग दलितों के काम करने के लिए नहीं किया जाता है। जनता के गंभीर मुद्दे चुनावों में गौण हो जाते हैं और गीत, नारे, खोखले वादे मुख्य हो जाते हैं। लेखक कहता है– ''लोक कवि और गायक नेताओं की चुनावी सभाओं में गाते थे। इनमें से हर एक अपने फेफड़ों में जोर और आवाज की लचक से भी चुनाव क्षेत्रों को हांगकांग और सिंगापुर बनाने का सपना दिखाने की जी–तोड़ कोशिश करता है।[4]

दरअसल जनम राजनीतिक अवसरवाद और भ्रष्टाचार का शिकार बनता है और एक बार पद का सुख भोग लेने के बाद खुद उसके दाँव–पेंच में रम जाता है। अगली बार जब उसे पता लगता है कि उसे उम्मीदवार बनाने के वजाय एक मोटी रकम घूस में देनेवाले को उम्मीदवार बनाया जा रहा है तो वह दल बदल कर अपनी जाति की पार्टी में शामिल हो जाता है और दुबारा विधान परिषद् में पहुँच जाता है। वह सदन में विरहा गाकर अपनी हैसियत बनाता है, मगर इसके बाद कथावस्तु में एक मोड़ आता है। एक नेता ने जन्म दिन पर उसे गाने के लिए बुलाया और सुर में न गा पाने के कारण उसे अपमानित कर मंच से उतार देता है। कहानी के इस अंत से समकालीन राजनीति की क्रूरता प्रकट होती है।

समकालीन महिला कथाकारों में जयश्री राय एक महत्त्वपूर्ण नाम है, जिन्होंने अपनी कहानी 'सुख के दिन' में जातिगत राजनीति के खोखलेपन को दिखलाया है। इस कहानी की विशेषता यह है कि उन्होंने नेताओं पर केन्द्रित करने के बजाय आम लोगों पर केन्द्रित किया है। कथावस्तु में नेताजी प्रत्यक्ष नहीं दिखते, रैली में गए गाँव के निम्न तबके के लोगों की बातचीत के बारे में मालूम पड़ता है। प्रतीकों की राजनीति करके नेताजी किस प्रकार अपनी जाति के लोगों का भावनात्मक दोहन करते हैं, प्रतीकों में आम–लोगों को उलझाकर खुद उच्च जीवन जीते हैं, इसी पर यह कहानी केन्द्रित है। कहानी का मुख्य चरित्र रघुनाथ नेताजी का भक्त है, उनके धनी होने को इस रूप में देखता है कि जब दूसरी जाति के नेताओं ने इतना कमाया तो हमारी जाति के नेता क्यों नहीं। प्रतीकों की राजनीति की यह सबसे चिंताजनक परिणति है। सुख के दिन का उसका मोह तब भंग होता है, जब रैली में पुलिस की लाठियाँ खाता है और घर आने पर देखता है कि उसका बीमार बच्चा मर गया है।

भारतीय राजनीति में पिछले बीस–पच्चीस सालों के दौरान जो उल्लेखनीय परिवर्तन घटित हुए हैं, उनमें सिविल सोसायटी का चर्चा में आना एक महत्त्वपूर्ण घटना है। खास तौर से इधर अन्ना हजारे के राजनीति और नौकरशाही में फैले भ्रष्टाचार के विरूद्ध आंदोलन के समय से यह भारतीय राजनीति का प्रमुख विषय बन गया है। राजनीति के शास्त्रीय विवेचन में सिविल सोसायटी की क्या परिभाषा दी गई यहाँ उस पर चर्चा की कोई जरूरत नहीं है, मैं यहाँ भारतीय समाज में इसकी कथित क्रांतिकारी भूमिका की वास्तविकताओं के बारे में कुछ बातें करना चाहूँगा। यह वास्तव में उस मध्य वर्ग का आंदोलन है जो हमेशा अपने सुख–सुविधाओं के खोल में रहना चाहता है और भयानक रूप से यथास्थितिवादी होता है। जब इसके सुखवादी जीवन–शैली में खलल पड़ता है तो यह सरकार से लेकर अपने इर्द–गिर्द पूरे वातावरण को गालियाँ देता है, जिसे आज सिविल सोसायटी कहा जा रहा, वही मध्य वर्ग है, जो भारत की आजादी के आंदोलन के दौरान एक ओर कांग्रेस के रचनात्मक कामों में हिस्सा लेता था जो व्यवस्था को बदलने के बजाय सत्ता परिवर्तन चाहते थे, क्योंकि सत्ता भ्रष्ट हो गई थी। ये वही खाऊ और भकोसू लोग हैं जो भ्रष्टाचार के खिलाफ धरने से उठकर रामदेव बाबा के योग शिविर में चर्बी घटाने जाते थे। यह पूरी तरह आत्मनिष्ठ और आत्म मुग्ध वर्ग है, जिसे इससे कोई मतलब नहीं है कि जिस विकास के लिए यह लालायित है, उसके कारण कितनी बड़ी आबादी अपनी जर, जमीन से विस्थापित होकर महानगरों की भीड़ में गुम हो गई। कैलाश बानखेड़े की कहानी 'कंटीले तार' इस सिविल सोसाइटी की कथित क्रांतिकारिता को समाने लाती है।[5]

इस शोधालेख में जिन कहानियों को शामिल किया गया है, उनके अलावा भी बहुत–सी कहानियाँ ऐसी हो सकती हैं, जिन पर तद्युगीन राजनीति का प्रभाव है, लेकिन बानगी के तौर पर उल्लेख्य कहानियों के आधार पर समकालीन कहानी में निहित राजनीतिक चेतना का आकलन बखूबी किया जा सकता है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि समकालीन कहानियों में वर्तमान समय की राजनीतिक विसंगतियों तथा भयावहताओं को अत्यंत यथार्थपूर्ण बेबाक शब्दों में उद्घाटित किया गया है। राजनेताओं का चारित्रिक स्खलन तथा सत्तालोलुपता के लिए अपनाए गए तमाम घिनौने हथकंडे इस समय के कथाकारों का मुख्य टारगेट बन गया। समकालीन लेखक–लेखिकाओं ने अपनी कहानियों में राजनीति से उत्पन्न तमाम समस्याओं को उद्घाटित करने में कोई कसर नहीं छोड़ा है। अतएव इस समय की राजनीतिक चेतना पूर्ववत्ती तमाम मानकों–स्थापनाओं को तोड़ता हुआ प्रतीत होता है।

संदर्भ

1. वागर्थ, एकांत श्रीवास्तव (संपादक), भारतीय भाषा परिषद्, कलकता, जुलाई, 2015, पृ०– 52
2. हिन्दी गद्य–साहित्य, डॉ० रामचन्द्र तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2018, पृ०– 339
3. वही, पृ०– 341
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ० रामसजन पाण्डेय (संपादक), संजय प्रकाशन, दिल्ली, 2004, पृ०– 442
5. आजकल, फरहत परवीन (संपादक), अप्रैल, 2013, पृ०– 19–20